Research Paper Political Science

आचार्य ज्ञानसागर की रचनाओं में प्रतिपादित भारत

Prof Dr B L Sethi | Director, Trilok Institute of Higher Study and Research , Hotel OM Tower,Church Road,MI Road , Jaipur

Smt Anita Yadav | Research Scholar, Depp. of Political Science, JJT University- Chudela, Jhunjhunu

KEYWORDS

आचार्य ज्ञानसागर की रचनाओं में प्रतिपादित भारत आज के भारत से भिन्न है। यह मध्य एशिया के कम्बोज से लेकर पूर्व में कामरूप (असम) तक व्याप्त है। उत्तर में कश्मीर1 से दक्षिण से सिंहल तक इसकी सीमा है इस वृहत्तर भारत में एक सुखी और समृद्ध समाज का ढांचा खड़ा किया गया है। आचार्य ज्ञानसागर कल्पित समाज में सदाचार, संतोष, सत्य और ईमानदारी की प्रवृत्ति रहने के कारण वियोग, शोक, रोग वृद्धत्वजन्य कष्ट नहीं होता। अनाचार के सेवन से रोग उत्पन्न होता है।

रोग की उत्पत्ति होने पर असमय में वृद्धत्व आता है। जिससे अनेक प्रकार के कष्ट होते है। जब संग्रह और लोभ की वृत्ति बढ़ती है, तो संघर्ष की उत्पत्ति होती है और यह संघर्ष ही चिन्ता और दीनता का कारण बनता है। जब समाज में सभी व्यक्ति शक्ति के अनुसार कार्य और आवश्यक्तानुसार पुरस्कार प्राप्त करते है, तो संघर्ष नहीं होता और न संचय की प्रवृत्ति ही उत्पन्न होती है। जब समाज के किसी भी सदस्य के पास आवश्यकता से अधिक संचय हो जाता है, तो वह उसका मनमाना अनियन्त्रित रूप से उपयोग करता है, जिससे आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि की उत्पत्ति होती है। जो निरन्तर श्रम करता है, संयमपूर्वक जीवनयापन करता है और स्वार्थ को त्यागकर सहयोग–सहकारिता की प्रवृत्ति को अपनाता है, वह हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। शारीरिक दोष का कारण असंयम और अनियंत्रित प्रवृत्तियाँ ही है। यही जयोदय महाकाव्य में दिखाई देता है।

ज्ञानसागर ने भोगभूमि के जिस समाज का चित्रण किया है, वह समाज कर्मभूमि की दृष्टि से सदाचार और संयम पर अवलम्बित है। कर्मभूमि में श्रम, सदाचार और संयम द्वारा रोग–शोक–चिन्ता–छीनाझपटीहीन समाज की स्थापना की जा सकती है। ज्ञानसागर जीवन भोगों की उपेक्षा भी नहीं करते हैं, उनका अभिमत है कि श्रेय का मार्ग प्रेय के आँगन से होकर ही जाता है। अतः विषाद् भय, ग्लानि, घृणा, अरूचि, क्रोध, कृपणता और अनाचार का नियंत्रण करने से ही सुख प्राप्त हो सकता है।[2]

जयोदय महाकाव्य कालीन समाज की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. आर्थिक समानता – संचय का अभाव, कर्मभूमि में भी आत्मनियंत्रण द्वारा आर्थिक समानता।
2. जनसंख्या का निरोध – संयम की प्रवृत्ति।
3. श्रम, शिक्षा और सदाचार की प्रवृत्ति।
4. उन्नति और विकास के लिए सभी को समान अवसरों की प्राप्ति।
5. स्वस्थ और सबल सहकारी वृत्तियों का जीवन में प्रतिष्ठान।
6. आवश्यकताओं की अल्पता।
7. जीवनोचित भोगों का समान वितरण।
8. संगठन, व्यवस्था, अनुशासन और पारस्परिक सहयोग।
9. आन्तरिक और बहिरंग विकारों का संस्कृतिकरण।

अपने दुःख और कष्ट को दूर करने का प्रतिकार न कर दूसरे के दुःख को दूर करने के लिए प्रयत्नशील होना ही सहयोग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। जिस व्यक्ति में निःस्वार्थभाव और उदारता की वृत्ति जाग्रत हो जाती है, वह व्यक्ति समाज का सहयोगी बन जाता है। उत्कृष्ट सदस्य वही है जो अपने स्वार्थ को भूलकर परस्वार्थ को महत्व दे।[3]

सामाजिक व्यवस्था का उद्भव

समस्त जैन पुराणों की भांति आचार्य ज्ञानसागर ने जयोदय महाकाव्य में भी सामाजिक व्यवस्था का उद्भव अन्तिम कुलकर नाभिराय व उनके पुत्र ऋषभदेव से स्वीकार किया है। जयोदय महाकाव्य में वर्णन है कि जब भोगभूमि के कल्पवृक्ष मनवांछित वस्तुएं प्रदान करने में असमर्थ हो गये तब अन्तिम कुलकर नाभिराय व उनके पुत्र ऋषभदेव ने जनता को असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प नामक कर्म सिखाये।[4]

असिकर्म	–	तलवार आदि शस्त्र धारण कर सेवा करना।
मसिकर्म	–	पढ़लिखकर आजीविका करना।
कृषिकर्म	–	जमीन को जोतना, बोना कृषि कर्म
विद्या कर्म	–	विभिन्न विद्याओं द्वारा आजीविका करना।
वाणिज्य	–	व्यापार करना
शिल्प	–	हस्त की कुशलता से जीविका करना।

इस प्रकार मनुष्यों के समूह रूपी समाज ने इन कर्मो की शिक्षा से प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना सीखा। समाज की शक्ति का अहसास हुआ, यही सामाजिक व्यवस्था के उद्भव का मूल प्रेरक तत्त्व रहा। इसी कारण सामाजिक व्यवस्था का प्रारम्भ भोगभूमि के पश्चात् कर्मभूमि के प्रारम्भ के साथ ही हो जाता है।

जब भोगभूमि कर्मभूमि के रूप में परिवर्तित होती है, तो जीवन की समस्याएं बढ़ती जाती है, जिनका समाधान एक युगल नहीं कर सकता, अनेक युगल करते हैं और इन युगलों का समूह ही समाज बन जाता है। जयोदय महाकाव्य में बताया गया है कि प्रजा को कुल की भांति एकत्र कर कुलकरों ने उपदेश दिया – समाज व्यवस्था प्रतिपादित की। ''आर्याणां कुल संस्त्यायकृते''5 पद का विश्लेषण करने से समाज व्यवस्था के सिद्धान्त प्रस्फुटित हो जाते हैं। इस पद में कुलों को, परिवारों को एकत्र करना तथा उनके एक साथ रहने के लिए जीवनयापन के सिद्धान्त को निरूपित किया गया है।

सामाजिक जीवन का सबसे अधिक आवश्यक तत्त्व रक्षा विधि है। अस्तित्व की रक्षा के लिए समाज का गठन किया जाता है। रक्षा के अनन्तर ही व्यवहार और व्यवसाय की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जयोदय महाकाव्य में 'रक्षाविधिमन्वशात्'6 रक्षाविधि के प्रतिपादन की चर्चा की गयी है। रक्षा का आश्वासन प्राप्त होने पर ही एकत्व की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यह एकत्त्व की वृत्ति अन्योन्याश्रयत्व पर अवलम्बित रहती है और अन्योन्याश्रयत्व का स्थूलतम आधार है व्यक्तियों का श्रम। श्रम विभाजन के कारण व्यक्ति को अपनी वैयक्तिकता विकसित करने का तो पूरा अवसर मिलता ही है, बल्कि समाज का गठन भी इसी श्रम द्वारा होता है। समाजशास्त्र में व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया को श्रम नहीं कहा जाता है, श्रम के अन्तर्गत वही क्रिया समाविष्ट मानी जाती है, जो व्यक्ति की इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति पर आधारित हों। इच्छाशक्ति के द्वारा व्यक्ति बाह्य जगत के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उसकी ज्ञानशक्ति इस रागात्मक सम्बन्ध को श्रम द्वारा क्रियात्मक रूप प्रदान करती है।

जयोदय महाकाव्य में प्रतिपादित ''प्रजाना प्रणिनं''7 पद से ज्ञात होता है कि प्रजा (जनता) को प्रसन्न कर सहवास और सन्तानोत्पत्ति द्वारा समाज वृद्धि को सम्पन्न किया जाना चाहिए। ''प्रजा सुप्रजसः''8 पद से इंगित होता है कि सम्पर्क स्थापना सामाजिक व्यवहार का आधारभूत सिद्धान्त है। अपने को अन्य व्यक्तियों तक पहुंचाने की प्रवृत्ति मानव में स्वभावतः पायी जाती है। इससे सामाजिक व्यवहारों के समन्वय एवं सांमजस्य से समाज का संगठन दृढ़ होता है।

''प्राणिनं'' का अर्थ सामाजिक दृष्टि से संरक्षण, संग्रहण और वितरण द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करना है। ज्ञानसागर ने ''प्रजानांहित कृत''9 पद से मैत्रीपूर्ण पारस्परिक व्यवहार एवं संबंध की व्यंजना की है। समाज की प्रमुख विशेषता इच्छित सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होना चाहिए। समाज में रहने वाले व्यक्तियों का उद्देश्य निश्चित, समान और व्यापक होता है।

जिनसेनाचार्य ने सत्य, शौच, क्षमा, त्याग, प्रज्ञा, उत्साह, दया, दम, प्रशम, विनय ये गुण वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को विकसित करने में सहायक बताये हैं। जिस व्यक्ति में ये गुण विद्यमान है, वह समाज का उत्तम सदस्य बनने की क्षमता रखता है।10

परिश्रम कर जीवन–यापन करना, अन्याय–अत्याचार द्वारा धनार्जन करने का त्याग करना एवं आवश्यकता से अधिक का संचय न करना स्वस्थ समाज के निर्माण में उपादेय है। ज्ञानसागर की यह समाज–व्यवस्था मनुष्य को केवल जीवित ही नहीं रखती, बल्कि उसे अच्छा जीवनयापन करने के लिए प्रेरित करती है। मनुष्य की शक्तियों का विकास समाज में ही होता है। मनुष्य केवल भौतिक सुखों से ही सन्तुष्ट नहीं होता, वह पाशविक सुखभोग से ऊपर उठकर आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है। कला, साहित्य, दर्शन, संगीत, धर्म आदि की अभिव्यक्ति मनुष्य की सामाजिक चेतना के फलस्वरूप ही होती है। ज्ञान का आदान–प्रदान भी सामाजिक वातावरण में सम्भव होता है। समाज में ही समुदाय, संघ और संस्थाएं बनती है। समाज एक ऐसी क्रियाशील समग्रता है, जिसके पीछे आध्यत्मिकता का रहना आवश्यक है।

संदर्भ

1. आचार्य ज्ञानसागर– ''जयोदय महाकाव्य '' भाग–1, सर्ग – 16/153
2. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री – '' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, अस्सी, वाराणसी, 1968 पृष्ठ 5
3. जयोदय महाकाव्य भाग–1, 9/164
4. जयोदय महाकाव्य सर्ग 16/179–182
5. जयोदय महाकाव्य 3/211, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री–'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ 125–126
6. जयोदय महाकाव्य 3/105, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री–'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ 126
7. जयोदय महाकाव्य 3/68, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री–'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ 126
8. जयोदय महाकाव्य 3/128, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री–'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ 126
9. जयोदय महाकाव्य 1/128
10. जयोदय महाकाव्य 15/214